LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

2/2 (श्लोक 6-20), शनिवार, 28 जून 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Ts7TTSz_5h0

परमात्मा का स्वरूप

गीता परिवार के मङ्गलमय गीत, भक्ति पूर्ण भजन, दीप प्रज्वलन एवं श्रीगुरु के चरणों की वन्दना के पश्चात पन्द्रहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध की विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गल कृपा से हमारा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि हम अपने जीवन को सार्थक करने, जीवन के परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन को इस लोक और परलोक में विजयी बनाने के लिए, इसकी पुण्यता प्राप्त करने के लिए, श्रीमद्भगवद्गीता के मनन चिन्तन, पठन-पाठन, स्वाध्याय और विवेचन सुनने में और उसके सूत्रों को जीवन में लाने में प्रयासरत हो गए हैं।

पता नहीं यह हमारे पूर्व जन्मों के पुण्योदय हैं, हमारे कोई इस जन्म के सुकृत हैं, या हमारे पूर्वजों के कोई ऐसे पुण्य फलित हुए या फिर इसी जन्म में किसी सन्त महात्मा, महापुरुषों की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गई, इस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया कि हमको श्रीमद्भगवद्गीता का सान्निध्य मिल गया।

हम सबके मन में दृढ़ भावना होनी चाहिए कि हमने श्रीमद्भगवद्गीता को नहीं चुना है, हम चुने गए हैं। मानव का कल्याण करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता से ज्यादा उपयोगी कोई ग्रन्थ नहीं है, ऐसा गीता प्रेस के संस्थापक ब्रह्मलीन सेठजी जगदयालजी गोयन्दका ने गीता जी की प्रस्तावक में लिखा। सिर्फ उन्होंने लिखा ऐसी बात भी नहीं है। गत इक्यावन सौ वर्षों में केवल भारत के ही नहीं अपितु विदेशों के अनेक दार्शनिकों ने भी श्रीमद्भगवद्गीता की महत्ता स्वीकार की है। सात सौ श्लोकों की यह मणिमालिका, अनन्त रत्नों को अपने अन्दर समाये हुए है।

गांधी जी कहते थे कि जब मुझे हर तरफ अन्धकार दिखाई देता है, तो मैं अपनी गीता माँ की शरण में चले जाता हूँ और वहाँ जाने पर मुझे मार्ग मिल जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के ब्रह्मसूत्रों को समझने के लिए और अपने जीवन के संशयों को मिटाने के लिए, स्वामीजी जैसे महापुरुष की शरण में आना चाहिए और उनके मार्ग दर्शन में इस ग्रन्थ के सत्य को जानना चाहिए।

पन्द्रहवें अध्याय का विवेचन हम सभी ने गत सप्ताह देखा। इस अध्याय को शास्त्र की उपमा दी गई है कि कैसे श्रीभगवान् ने पीपल के एक उल्टे वृक्ष से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिकल्पना को परिलक्षित किया है। हमने सुखदेव जी की कथा की माध्यम से उसे समझने का प्रयास किया।

अच्छे कर्म किए तो ऊपर की योनि, बुरे कर्म किए तो नीचे की योनि, ठीक-ठाक कर्म किए तो पुनः मनुष्य योनि। इसी प्रकार चौरासी लाख योनियों में हमारा भ्रमण अनन्त काल से, करोड़ों-करोड़ों वर्षों से चलता आ रहा है। क्या यह यूँ ही चलता रहेगा? श्रीभगवान् ने कहा उपाय है, यदि उपाय करोगे तो इससे छूट सकते हो। कौन से उपाय से छूट सकते हैं?
तो श्रीभगवान् ने कहा-

असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।

असङ्ग के शस्त्र से, इन उपायों से तुम इससे छूट सकते हो। किससे असङ्ग होना है?
श्रीभगवान् ने कहा आसक्ति से असङ्गता लाओ। विषयों की आसक्ति से असङ्गता करना ही मूल बात है, फिर कैसी स्थिति बनती है?
यह श्रीभगवान् ने पाँचवे श्लोक में बताया-

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

छठे श्लोक में श्रीभगवान् ने अपना पता बताया। जब मेरे पास आते हो तो तुम कहाँ पहुँचते हो? श्रीभगवान् ने कहा मेरा जो स्थान है, वह स्थान स्वयं प्रकाशित है।

15.6

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम।।6।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (और) (जिसको) प्राप्त होकर जीव लौट कर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

विवेचन - श्रीभगवान् यहाँ उपमा एवं रुपक अलङ्कार का प्रयोग कर रहे हैं। उपमा अर्थात सीधे-सीधे अपनी बात कहना जैसे सीता का मुख चन्द्रमा के समान है। जबकि रूपक में सन्देह प्रकट होता है, जैसे मेरा बेटा चाँद है, यहाँ सन्देह है। ईश्वर प्रकाशमय है यह रूपक अलंकार है, और इसलिए अनादि काल से प्रकाश की कल्पना ईश्वर से की गई है। वेदों में कहा है - **तमसो मा ज्योतिर्गमय,** ईश्वर को ज्योति का स्वरूप माना है।

तुलसीदास जी कहते हैं -

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

प्रकाश ईश्वर का पर्यायवाची हो गया है वेदों ने इसे भृगु ज्योति कहा है, अंग्रेजों ने इसे डिवाइन लाइट कहा है, मुस्लिम ने नूर-ए-इलाही कहा है। पारसी धर्म मे जरस्थुत्र ने सूर्य को ही ईश्वर कहा है, लेकिन श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम मुझे लौकिक तत्त्व से नहीं समझ सकते, मैं तो पाँचों तत्त्वों से परे हूँ। इसलिए हमारे यहाँ भगवान के चार स्वरूप की उपासना होती है, श्रीभगवान् के नाम, रूप, उनकी लीलाओं एवं उनके धाम की उपासना करना एवं उनके अलौकिक स्वरूप को समझना।

मौलिक बात यह है कि श्रीभगवान् का जो धाम है उसे प्रकाश का रूपक देते हुए उसकी दिव्यता को समझते हैं। श्रीभगवान् के धाम में कोई भौतिक प्रकाश है ऐसी बात नहीं है, यहाँ अलौकिकता की बात है। श्रीभगवान् कहते हैं कि उस धाम पर पहुँचकर वापिस नहीं आतें।

आदि शंकराचार्यजी भगवान भजगोविंदम् में लिखते हैं -

पुनरपि जननीं पुनरपि मरणम्
पुनरपि जननीं जठरे शयनम् ।।

बार-बार मरते हैं बार-बार जन्म लेतेहै, बार-बार माँ के गर्भ में उल्टा लटकते हैं, करोड़ों जन्मों से यही यात्रा चली आ रही है, श्रीभगवान् कहते हैं कि यदि उसे यात्रा से मुक्ति पाना है तो मेरे धाम आ जाओ।

15.7

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है; (परन्तु वह) प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

विवेचन - अद्वैत के अनुसार यह सर्वश्रेष्ठ श्लोक है। ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजी महाराज का विवेचन सुनने विवेचक बाल्यकाल में अपने मित्र के साथ जाते थे। हर बार वे दोनों शर्त लगाते थे कि स्वामीजी आज यह वाला श्लोक कहेंगे अथवा मानस में तुलसीदास जी द्वारा कही गयी, यह चौपाई -

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥1॥

श्रीमद्भगवद्गीता में परमात्मा ने जो उपदेश किया, श्रीरामायण में भगवान् श्रीराम के जीवन चरित्र में उसको चरितार्थ किया।

एक स्थान पर परमात्मा बोलते हैं और दूसरे स्थान पर उस बात को व्यवहार में लाते हैं। वे करके बताते हैं। जो श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं वही रामचरितमानस में मिलते हैं।

हे अर्जुन! जो कुछ भी तुम इस संसार में देखते हो, वह और तुम भी मेरा ही अंश हो। मुझसे अलग नहीं हो। तुम मेरे ही हो। तुम मेरा ही अंश हो। इस देह में जीवात्मा मेरा ही अंश है। जो मन और पाँचो इन्द्रियों को आकर्षित करता है।

दो शब्द होते हैं एक पुरातन और एक सनातन। पुराण पुरातन कहे गये जो बहुत पुराने हैं, लाखों साल पुराने। उनकी कालावधि को जाना नहीं जा सकता। जिनका काल भी जाना नहीं जा सकता, वे हो जाते हैं पुराण, अर्थात् बहुत पुराने।

कभी पहली बार हुआ है, ऐसा पहले हुआ ही नहीं।
वह है सनातन। इसकी किसी ने स्थापना नहीं की। यह हमेशा से था, हमेशा से है और हमेशा रहेगा। श्रीभगवान् कहते हैं, जो यह जीव है, वह सनातन है क्योंकि मैं भी सनातन हूँ।

जो वृक्ष हमने देखा, उसकी जड़ परमात्मा हैं। वही उसका तना होगा। वही उसकी पत्तियाँ होगी, वही उसकी शाखा होगी। वही फलों के रूप में, फूल के रूप में बढ़ता है। वैसे ही परमात्मा प्रकट होते हैं, अलग-अलग रूप में, अलग-अलग जीवों के रूप में, पशु-पक्षियों में, योनियों में, नदियों में, पहाड़ों में परमात्मा ही विद्यमान हैं, उनके अतिरिक्त कुछ नहीं। वह एक ही हैं तो अलग-अलग क्यों प्रतीत होते हैं। ये तीनो बातें हम स्लाइड के द्वारा समझेंगे।

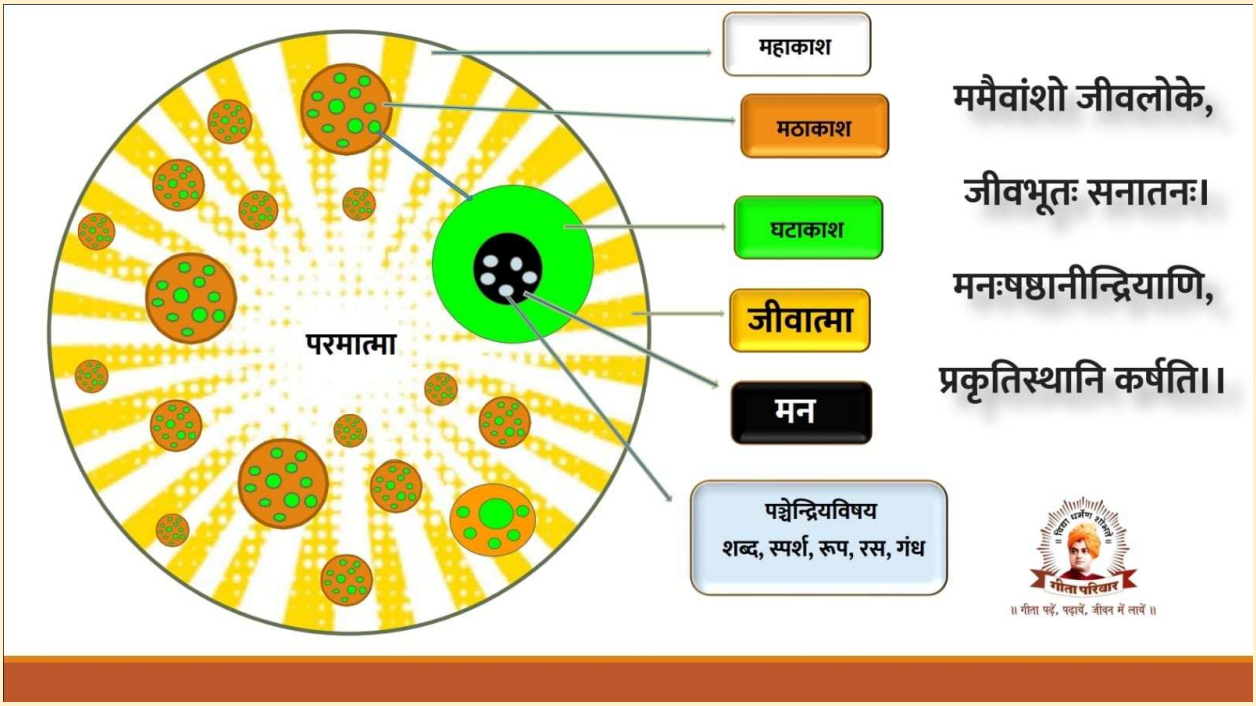

शास्त्रकारों ने इस तथ्य को एक अति उत्तम उदाहरण द्वारा समझाया - **महाकाश, मठाकाश और घटाकाश।**

महाकाश अर्थात् हम जिस घर में बैठे हैं उसके बाहर जो आकाश मण्डल दिखता हैं, मेरे घर के भीतर का जो आकाश है, उसे मठाकाश मान लेते हैं, और गिलास के अन्दर का आकाश घटाकाश है।
आकाश जो मेरे घर के बाहर है और घर के अन्दर है या मेरे कमरे के अन्दर का है, वह अलग-अलग है या एक ही है? ध्यान में आएगा कि एक ही है। हमारे घर के बाहर और भीतर का आकाश एक ही है। आकाश एक ही होने पर भी अलग-अलग है क्योंकि उसका तापमान अलग-अलग है। आकाश एक होने पर भी अलग-अलग प्रतीत होता है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति भिन्न हो जाती है।

यदि गिलास काँच का है और फूट जाता है तो उसका घटाकाश, कमरे के मठाकाश में मिल गया ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु वे तो पहले से ही एक थे। यदि घर की दीवारें गिर जायें तो उसका मठाकाश बाहर के महाकाश से मिल गया ऐसा प्रतीत होगा, परन्तु वे तो हमेशा से ही एक थे। उसी प्रकार परमात्मा और हम अलग नहीं है। हम सभी उसी परमात्मा के अंश हैं, मात्र अलग प्रतीत होते हैं, अलग हैं नहीं।

परमात्मा महाकाश हैं, हमारा शरीर मठाकाश है और इस शरीर के भीतर स्थित जीवात्मा घटाकाश है।

परमाणु बिजलीघर में बिजली उत्पन्न होती है, वह लाखों मेगावाट की बिजली अलग-अलग शहरों में ग्रिड से होकर जाती है। पुनः शहर के ट्रांसफार्मर से हमारी सोसायटी में आती है और फिर हमारे घरों में आती है। हमारे घर के मीटर से होकर एक-एक स्विच बोर्ड में आती है। फिर हम विभिन्न उपकरणों के स्विच ऑन करते हैं तो वे चलते हैं। अब बताइए उन सभी स्विच बोर्ड और उपकरणों तक आने वाली बिजली एक ही है? मेरे घर में और मेरे पड़ोसी के घर में आने वाली बिजली, एक ही है या अलग है? अलग-अलग शहरों और घरों में आने वाली बिजली एक ही है परन्तु मेरा बिजली का बिल और मेरे पड़ोसी का बिजली का बिल अलग-अलग आता है। अर्थात हम सब प्राणियों में बसने वाली जीवात्मा एक ही है परन्तु हम अपने कर्मफलानुसार अलग-अलग रूपों में उसको अनुभव करते हैं।

उसी प्रकार कर्मफल अलग होने के बाद भी हम सभी में परमात्मा का चेतन स्वरूप एक ही रूप में विद्यमान है। हम अलग-अलग नहीं हैं, हमारे कर्म और लेखा-जोखा अलग होने के कारण अलग प्रतीत होते हैं और उसके अनुसार हम बार-बार जन्म

लेते हैं। कैसे अलग होते हैं और कैसे जन्म लेते हैं? उसकी व्याख्या श्रीभगवान् ने आगे कही -

यह शरीर हम मर गए तो भी वैसा का वैसा ही रहता है। नाक, कान, हाथ, पैर सब वैसे के वैसे ही रहते हैं। लेकिन चेतन तत्त्व, जिसे हम प्राण या जीवात्मा भी कहते हैं शरीर में से निकल गया।

जीव में वह चेतनता, जीवात्मा और इस घटाकाश के साथ मन सहित पाँच इन्द्रियाँ विद्यमान हैं। इन पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय- शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श और रस के कारण यह मन जीवात्मा को शरीर से बाँध देता हैं। मन और पाँचो इन्द्रियों के जो संस्कार हैं वे अनन्त करोड़ों-करोड़ों जन्मों से हमारे साथ चिपके चले आ रहे हैं।

एक को कोई बात अच्छी लगती है, दूसरे को दूसरी बात अच्छी लगती है। ये ही हमारे पूर्व जन्मों के संस्कार हैं। करोड़ों-करोड़ों जन्मों में हमने जो कर्म किए, उन कर्मों से जो भी आसक्तियाँ निर्माण हुई, उनका सङ्ग निर्माण हुआ, उन सङ्ग की आसक्तियाँ कई जन्मों तक हमारे साथ चलती हैं। जब तक हमें मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता तब तक अनन्त जन्मों के संस्कार हमारे साथ चलने वाले हैं।

15.8

शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

विवेचन - अर्जुन! जैसे वायु गन्ध को एक स्थान से ग्रहण करके दूसरे स्थान तक ले जाती है वैसे ही यह जीवात्मा जिस शरीर का त्याग करता है उससे मन सहित इन्द्रियों के संस्कारों को लेकर एक शरीर से दूसरे शरीर में चल जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं आत्मा न कुछ करता है, न कर सकता है, यह अकर्तुम है, फिर यह चला जाता है। हम लोगों को लगता है कि इस शरीर से निकला, फिर उड़ता होगा हवा में और दूसरे गर्भ में जाकर प्रवेश कर जाता होगा। वास्तव में यह न कहीं आता है, न जाता है।

श्रीभगवान् ने एक सुन्दर उदाहरण दिया है-

आप किसी कूड़ाघर के पास से गुजरते हैं तो सौ-दो सौ गज पहले उसकी दुर्गन्ध हमारे नाक में प्रविष्ट हो जाती है। उधर से आने वाली वायु उस गन्ध को लेकर आती है और दो सौ गज पहले हमारी नासिका में प्रविष्ट हो जाती है, अर्थात् वायु उस गन्ध को लेकर हमारी नासिका में प्रविष्ट कर जाती है परन्तु वास्तव में वायु का स्वभाव है, वह चिपकता नहीं है आगे बढ़ जाती है। वायु किसी गन्ध को सदा के लिए धारण नहीं कर सकती है।

पानी में लाल रङ्ग डाला जाए तो वह लाल ही रहेगा परन्तु हवा में लाल रङ्ग उड़ाने पर वह बहुत समय तक लाल नहीं रह सकती है। वायु की विशेषता है कि वह किसी भी तत्त्व को ग्रहण नहीं करती है। जल ग्रहण करता है, उसमें कोई पदार्थ डाल दें तो वह उसमें रहेगा। वायु में कोई पदार्थ डालने पर सदा नहीं रह सकता है। कोई पदार्थ अपनी शक्ति से वायु में जितना समय रह सके, रहता है। धूल उड़ती है फिर नीचे गिर जाती है। वायु किसी भी पदार्थ को अपने ग्रहण नहीं करती,ऐसे ही, जिस प्रकार वायु उस गन्ध से चिपकती नहीं है वैसे ही यह आत्म तत्त्व किसी भी चीज से चिपक नहीं सकता लेकिन हमारे कर्मफलों को एक शरीर से दूसरे शरीर तक लेकर चला जाता है।

हम लोगों ने पूर्वजन्म में जो-जो कर्म किए उसकी स्मृति, उसके संस्कार, उसके कर्म फल, उसके पाप, कारण शरीर के रूप में एक योनि से दूसरी योनि में, दूसरे शरीर में चिपक कर चले जाते हैं, आत्मा उनको ले नहीं जाती है, जैसे वायु के साथ गन्ध चिपक कर चली जाती है, वायु नहीं ले जाती है। वायु के समान ही आत्मा वाहक के रूप में कार्य करती है। वह निर्लेप नारायण है। वह मात्र वाहक है, ग्रहण नहीं करती है। साथ रखती नहीं है। इसी प्रकार आत्म तत्त्व कुछ भी ग्रहण नहीं करता है। घर

बदलते रहते हैं। पुराने घर के वासना, कर्मफल आदि नए घर में जाते रहते हैं, कैसे जाते हैं?

श्रीभगवान् कहते हैं - **यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।**

15.9

श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं(वँ्), विषयानुपसेवते॥15.9॥

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन करता है।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं कि, ये शरीर बदलते रहते हैं। घट बनते रहते हैं, बिगड़ते रहते हैं। जैसे प्रतिदिन हम वस्त्र बदलते रहते हैं। उनके पूर्व जन्म की विषय-वासनाएँ, कामनाएँ, इच्छाएँ, स्पृहा, तृष्णाएँ, आशाएँ, पूरी होने के लिए एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते रहते हैं, इसलिये जो भी तीव्र इच्छाएँ, कामनाएँ हम करते हैं उनमें कुछ पूरी हो जाती हैं। जो पूरी नहीं होती वे हमारे मन में ही रह जाती हैं। उसके आधार पर हम जन्मों-जन्मों तक अलग-अलग प्रकार के प्रयास करते रहते हैं। विभिन्न शरीरों को भोगते हैं,क्योंकि कर्म फल मनुष्य योनि में ही प्राप्त होते हैं। रामचरितमानस में चौपाई आती है -

बड़े भाग जो मानुष तन पावा सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा

इस मनुष्य योनि को पाने के लिए देवता भी तरसते हैं, श्रीभगवान् यहाँ पाँच इन्द्रियों व उनके विषयों के बारे में बात करते हैं।

श्रोत्र - इसका विषय है शब्द। इसकी इन्द्रिय है, कान।

हिरण की गति इतनी तेज होती है कि चीता चालीस बार में से औसतन एक बार ही इसका शिकार कर पाता है। उनतालीस बार वह विफल होता है।
हिरण का गुण है चपलता पर उसका एक व्यसन भी है- ध्वनि (सङ्गीत)
हिरण के पास कस्तूरी नामक द्रव्य होता है। उसे प्राप्त करने के लिए शिकारी उसे पकड़ते हैं। मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है।

हिरण अपनी चौकड़ी से चीते से अधिक तेज भागता है, परन्तु इतनी चौकड़ी भरने वाले हिरण को मनुष्य पकड़ लेता है। इसका कारण है, हिरण की वासना। हिरण को सङ्गीत अत्यन्त प्रिय है। भगवान् श्रीकृष्ण जब भी बाँसुरी बजाते हैं, उनके आस-पास हिरण अवश्य होते हैं। कस्तूरी के कारण हिरण को पकड़ने वाले शिकारी एक विशेष प्रकार की धुन बजाते हैं। विशेष यन्त्र के द्वारा वे सङ्गीत बजाते हैं। हिरण अपनी आँखें बन्द कर, उस धुन को सुनकर मग्न हो जाता है। अत्यन्त आसक्त होकर वह सङ्गीत का श्रवण करता है। शिकारी जब देखता है कि हिरण उस धुन में पूरी तरह आसक्त हो गया है तो वह धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसे पकड़ लेता है। शिकारी हिरण के पेट को काटता है, कस्तूरी को प्राप्त करता है और उस हिरण को तड़पते हुए छोड़कर वहाँ से चला जाता है।

चक्षु- इसका विषय है रूप, दृश्य। इसकी इन्द्रिय है नेत्र अथवा आँख। नेत्र का विषय है रूप, दृश्य, जो भी दृश्य हम देखते हैं। हमनें पतङ्गों को देखा है। रात में एक ही रोशनी पर हजारों पतङ्गें आकर टकराते हैं। रात भर उस प्रकाश से टकरा कर सुबह तक वो पतङ्गें मर जाते हैं। जब वे टकराते हैं तो उन्हें आनन्द नहीं आता है, उन्हें चोट लगती है। लेकिन चोट लगने पर भी पतङ्गों को रूप का आकर्षण इतना अधिक होता है कि प्रकाश को प्राप्त करने के लिए प्रकाश पर टकरा-टकराकर अपने प्राण गँवा देते हैं। पतङ्गें दीपक की लौ में जल कर, भस्म हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें दर्द नहीं होता है। जैसे ही वे दीपक के पास आते हैं उसकी ऊष्मा पतङ्गों को जलाकर भस्म कर देती है।

स्पर्श- इसका विषय है स्पर्श। इसकी इन्द्रिय है त्वचा। संसार का सबसे शक्तिशाली प्राणी हाथी जिससे शेर भी नहीं उलझता,

महावत के छोटे से अङ्कुश से उसके इशारों पर करतब करता है। उठता-बैठता है, पाँव उठाता है। मनुष्य सबकी कमज़ोरी जानता है और हाथी की कमज़ोरी है, हथिनी का स्पर्श। हाथी को पकड़ने के लिए मनुष्य अमावस्या के दिन बड़ा गड्ढा खोदता है और हाथी को पकड़ने के लिए पिञ्जरा लगाता है। उस गड्ढे को पुआल से ढक दिया जाता है। उसके पीछे हथिनी के आकार का ढाँचा लगाया जाता है। उस पर हथिनी का ताजा गोबर लगाया जाता है। हथिनी के स्वर वाली विशेष ध्वनि बजाई जाती है। हाथी दो किलोमीटर से भी किसी भी ध्वनि को सुन सकता है, अतः वह हथिनी की इस आवाज को सुनकर उस दिशा में दौड़ता है।

अमावस्या की रात्रि में उसे वह ढाँचा हथिनी जैसा ही दिखाई देता है। थोड़ा पास आकर हथिनी के गोबर के कारण उसे हथिनी की गन्ध भी आती है। अब उसे विश्वास हो जाता है कि यह हथिनी ही है। उसे स्पर्श करने के लोभ के कारण वह गड्ढे में गिर कर उसमें फँस जाता है। कुछ न कर पाने की स्थिति में वह जोर से चिङ्घाड़ता है। उसकी चिङ्घाड़ से जङ्गल के सभी पशु-पक्षी विचलित हो जाते हैं। गड्ढे से निकलने के प्रयास में वह चारों ओर से स्वयं को घायल कर लेता है। घावों से उसे पीड़ा भी होती है। इतना थक जाता है कि वह चिङ्घाड़ना बन्द कर देता है।

तीन दिन तक कोई शिकारी महावत उसके पास नहीं जाता है। भूख और घावों से व्यग्र हाथी हताश हो जाता है। तीन दिन पश्चात् महावत उसके पास जाता है और उसे केले और रोटी देता है। महावत के जाने के बाद हाथी उन केलों और रोटी को खा लेता है। अगले दिन जब महावत जङ्गल आता है तो हाथी चिङ्घाड़ता नहीं है वरन् खाने की आशा करता है।

महावत के हाथ में केले देखते ही हाथी सूँड़ बढ़ाकर उससे केले लेता है। हाथी प्रसन्नता से केले लेता है। पाँचवें दिन हाथी प्रतीक्षा करता है कि कब महावत आएगा? आज महावत हाथी को सीधे रोटी नहीं देता बल्कि विशेष प्रकार के करतब सिखाता है। दाएँ मुड़ो, बाएँ मुड़ो।

आज महावत हाथी को ऐसे खाना नहीं देता, वह बहुत सारे सङ्केत करता है, हाथी समझता नहीं है। जब भी हाथी सङ्केत समझ जाता है तो उसे एक केला मिलता है और आज इस तरह महावत आठ घण्टे तक हाथी को प्रशिक्षण देता है। आगे जाओ, पीछे जाओ, सूँड़ उठाओ आदि का सङ्केत देता है, धीरे-धीरे हाथी भी समझ जाता है कि सङ्केत समझने पर ही खाना मिलेगा तो वह सङ्केत समझने लगता है।

इस प्रकार पूरा प्रशिक्षण देकर हाथी को बहुत सारा खाना देकर उस दिन महावत चला जाता है। छठे दिन जब महावत आता है तो हाथी पहले से तैयार रहता है। आज हाथी से सारे कार्य सङ्केत देकर महावत एक घण्टे में करा लेता है जो उसने पिछले दिन आठ घण्टे में सिखाया था। हाथी महावत के सङ्केत पर जैसा वह कहता है, दाएँ जाओ तो दाएँ जाता है, बाएँ जाओ तो बाएँ जाता है, बैठ जाओ तो बैठ जाता है, उसके सङ्केत के अनुसार हर कार्य करने लगता है। महावत उसे केले देता है, छठे दिन हाथी महावत के सभी सङ्केत समझने लगता है।

सातवें दिन महावत हाथी की सूँड पकड़ कर उस गड्ढे में उतरता है, उसके घावों पर लेप लगाता है, उसे पुचकार कर, प्रेम से लिपटकर अपना बना लेता है और उसकी सूँड़ पर सवार होकर बाहर निकल आता है। अपने साथ लाए लकड़ी के पट्टे को गड्ढे में डाल हाथी को दिए गए प्रशिक्षण के द्वारा सङ्केत कर बाहर निकाल लेता है और हाथी की सूँड़ के माध्यम से उस पर चढ़ कर बैठ जाता है और अङ्कुश के सहारे उसे नचाता रहता है। सात दिन पहले जो हाथी वन का सबसे शक्तिशाली प्राणी होता है, अब वह जीवन भर महावत के सङ्केत पर नाचता रहता है। स्पर्श के आकर्षण में हाथी अपना जीवन गँवा देता है।

रसना - स्वाद की इन्द्रिय है जिह्वा। जीभ का आकर्षण किसको है, शास्त्रकारों ने कहा मछली को याद करो। एक छोटी सी आटे की गोली काँटे में लगाकर मछुआरा पानी में डालता है, मछली आकर पहले उसे किनारे से कुतरती है, सोचती है मैं किनारे से खा लूँगी, फसूँगी नहीं लेकिन काँटे सहित जैसे ही आटे की गोली को खाती है, फँस जाती है और मछुआरा ऊपर खीञ्च लेता है। पकड़ ली जाती है, रसना के आकर्षण में मछली अपने प्राण गँवाती है।

घ्राण - इसकी इन्द्रिय है नासिका। आपने भ्रमर का नाम सुना है। इस भ्रमर को श्रीभगवान ने इतनी शक्ति दी है कि यह कड़े से कड़े पेड़ में छेद कर उसमें अपना घोंसला बना कर रहता है, परन्तु यह भ्रमर गन्ध के आकर्षण में जीता है। पुष्प का पराग अर्थात् गन्ध इसे अत्यन्त प्रिय है। कमल के पुष्प पर यह जाकर बैठता है, प्रातःकाल कमल की पङ्खुड़ियाँ खुलती हैं, यह जाकर

बैठ जाता है, दिनभर पराग का आस्वादन करता है। सायंकाल पङ्खुड़ियाँ बन्द होती हैं, भ्रमर चाहे तो निकल सकता है, परन्तु गन्ध के आकर्षण में निकलता नहीं है। धीरे-धीरे पङ्खुड़ियाँ बन्द हो जाती हैं और वह भी पुष्प में बन्द हो जाता है। वह चाहे तो अपने तीक्ष्ण दाँतों से पङ्खुड़ियों को काट कर निकल सकता है, लेकिन गन्ध के आकर्षण में निकलता नहीं है। या तो दम घुटने के कारण या रात में निकले हाथियों द्वारा पुष्प के साथ कुचलकर मर जाता है। अन्त में यह भ्रमर गन्ध के आकर्षण में मारा जाता है।

शब्द के आकर्षण में हिरण, रूप के आकर्षण में पतङ्ग, स्पर्श के आकर्षण में हाथी, स्वाद के आकर्षण में मछली और गन्ध के आकर्षण में भ्रमर अपने प्राण गँवाते हैं। कल्पना कीजिए उस मनुष्य की जिसको इन पाँचों का आकर्षण है। हमको तो बढ़िया-बढ़िया सङ्गीत भी सुनने को चाहिए, बढ़िया-बढ़िया दृश्य भी देखने को चाहिए, बढ़िया-बढ़िया खाने को भी चाहिए, बढ़िया-बढ़िया नर्म गद्दे का स्पर्श भी चाहिए, बढ़िया-बढ़िया सुगन्ध भी चाहिए। ये निरीह प्राणी तो एक ही आकर्षण में प्राण गँवा देते हैं। हमारा क्या होगा जो इन सभी से दिन-रात बँधे हुये हैं?
इन पाँचों के आकर्षण में बँधे होने के कारण हम बार-बार गर्भ में उल्टे लटकते आ रहे हैं।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

करोड़ों जन्मों से यही कर रहे हैं।

15.10

उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जीवात्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली अवस्था शरीर को छोड़ने पर, दूसरी शरीर धारण करने से पूर्व, एवं तीसरी अगला शरीर धारण करने पर। इन तीनों स्थितियों में मैं किस स्थिति में हूँ यह केवल ज्ञानीजन जानते हैं।

गुरु बिन ही न ज्ञान ज्ञान बिना होई ना वैराग्य ।

अर्जुन को श्रीभगवान् का विराट रूप तभी दिखा जब श्रीभगवान् ने उन्हें दिव्य चक्षु दिए। इसी प्रकार बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त नहीं होता क्योंकि जिसके पास ज्ञान को जानने के लिए समझ है वह ही दूसरे को समझा पायेगा।

15.11

यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं, यत्न करना तो आवश्यक है परन्तु किसी के मात्र यत्न करने से मेरी प्राप्ति नहीं होती। हम लोग अपने आसपास देखते हैं कि बीस वर्ष से गीता जी पढ़ रहे हैं परन्तु स्वभाव में कोई अन्तर दिखता नहीं। प्रतिदिन तीन घण्टे पूजा करते हैं परन्तु दो फीट भूमि के लिए अपने भाई पर मुकद्दमा कर रखा है। प्रतिदिन चार घण्टे नाम जप करते हैं परन्तु कितना क्रोध करते हैं। प्रतिदिन ये सब करने के बाद भी स्वभाव में परिवर्तन आ जाये, यह आवश्यक नहीं है।

श्रीभगवान् कहते हैं स्वभाव में परिवर्तन ही मूल बात है। जब तक स्वभाव में परिवर्तन नहीं आता तब तक किए गए साधन से उपलब्धि नहीं होती। ऐसे महापुरुष भी हैं हैं जो प्रतिदिन एक लाख, कुछ तो दो लाख नाम जप प्रतिदिन करते हैं। आठ से बारह घण्टे का नाम जप करने के बाद भी परिवर्तन नहीं होता।

श्रीभगवान् कहते हैं अन्तःकरण की शुद्धि मूल है। क्या करना है और क्या नहीं करना है? इनका ध्यान रखने पर साधना परिपक्व होती है। इनका ध्यान नहीं रखने पर साधना का प्रभाव नहीं होता है। जप कर लूँ, इतनी पूजा कर लूँ, वह तो आवश्यक है ही, परन्तु साथ ही अन्तःकरण की शुद्धता आवश्यक है। हम झूठ बोलते रहेंगे, हम कपट करते रहेंगे, हम घृणा करते रहेंगे और मुझे श्रीभगवान मिल जाएँगे? नहीं मिलेंगे।

श्रीभगवान् कहते हैं, यत्न करके हृदय से कचरा हटाना पड़ेगा, अन्यथा मैं आ भी गया तो तुम देखोगे कैसे? अन्तःकरण मैला होने पर परमात्मा सामने होते हैं परन्तु दिखते नहीं हैं। ये झूठ, कपट, तृष्णा, वासना, राग, द्वेष सब इस अन्तःकरण के मैल हैं। ये मैल जब हमारे अन्दर होंगे तो परमात्मा नहीं मिलेंगे।

15.12

यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

विवेचन- श्लोक सङ्ख्या बारह, तेरह और चौदह ये अप्रतिम श्लोक हैं। श्रीभगवान् ने अपने बृहत से सूक्ष्म का वर्णन किया है, कल्पना करने पर रोमाञ्च हो जाता है। अन्तःकरण की शुद्धि पर जो प्राप्त होता है, श्रीभगवान् उसे बता रहे हैं। श्रीभगवान् ने तीन उदाहरण दिए हैं- सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि।

अग्नि की तीन शक्तियाँ हैं- एक होती है **दाहक शक्ति**, हम अग्नि के पास जाते हैं तो उसकी ऊष्मा का अनुभव होता है। जितनी बड़ी अग्नि उतनी अधिक ऊष्मा। एक अग्नि में प्रकाश होता है, अग्नि है तो प्रकाश दिखता है और एक में दोनों। जैसे आप मात्र गैस जलाइए तो उसमें प्रकाश कम है पर ऊष्मा बहुत है, पर उसमें पढ़ नहीं सकते हैं। उसमें दाहकता है पर प्रकाश नहीं है। चन्द्रमा के प्रकाश में पढ़ सकते हैं परन्तु उसमें रोटी नहीं पकेगी, उसमें शीतलता है। चन्द्रमा की अग्नि में **प्रकाशक शक्ति** है, पर दाहकता नहीं है। सूर्य के प्रकाश में प्रकाश भी है और दाहकता भी है। सामने खड़े रहने पर त्वचा जल जाएगी, इतनी दाहकता है। श्रीभगवान् कहते हैं, जो दाहक शक्ति वाला है, जिसमें प्रकाश है और जिसमें दोनों है, तीनों ही मेरी शक्ति से हैं। तो क्या इस अन्तःकरण की शुद्धि से जो दिखता है वह इस संसार से बाहर का प्रकाश है?

15.13

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान् ने यहाँ शक्ति का अवतरण किया है। श्रीभगवान् ने कहा कि मैं ही पृथ्वी में प्रवेश कर सब भूतों को धारण करता हूँ। हम बीज बोते हैं तो उससे पेड़ निकल आता है। उस बीज में सूक्ष्मदर्शी से देखने पर भी पेड़ कहीं नहीं दिखता परन्तु उससे वृक्ष निकल आता है, उससे हजारों फल और पुनः हजारों बीज निकल आते हैं। यह कैसे होता है? पृथ्वी में प्रवेश कर परमात्मा सबको पुष्ट करते हैं। सूर्य की अग्नि शक्ति में मै पृथ्वी में प्रवेश करता हूँ और चन्द्रमा की शीतलता से औषधियों को पुष्ट करता हूँ।

केवल सूर्य के प्रकाश में फसल पके उसे चन्द्रमा की शक्ति न मिले तो फसल खराब हो जाती है। सूर्य के प्रकाश के साथ चन्द्रमा का प्रकाश मिलने पर ही फसल पुष्ट होती है। श्रीभगवान् ने कहा मैं औषधियों को पुष्ट करता हूँ।

15.14

अहं(वँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं वो जो महाकाश से मठाकाश में जाता है और मठाकाश से घटाकाश में आकर प्राणों के रूप में व्याप्त हो जाता है, वह औषधियों के रूप में चन्द्रमा से बरसता है और वनस्पतियों से प्राण बनकर हमारे शरीर को पुष्ट करता है।

तीन प्रकार की अग्नि है - **बड़वाग्नि**, **दावाग्नि**, **जठराग्नि**। बड़वाग्नि समुद्र की, दावाग्नि वन की और जठराग्नि पेट की अग्नि होती है। यदि आपने भोजन में मात्र आइस्क्रीम खाई है, माइनस चौंतीस डिग्री तापमान वाली, परन्तु मलत्याग करने पर मल गर्म ही आयेगा। यह जठराग्नि से पकने के कारण होता है। जैनियों का सुन्दर नियम है सूर्यास्त के बाद मत खाओ। जठराग्नि सूर्य के प्रकाश के साथ प्रबल है परन्तु सूर्यास्त होते-होते वह मन्द हो जाती है। आयुर्वेद के अनुसार रात में नहीं खाना चाहिए, एलोपैथ कहता है रात में कम खाओ, जैन तो खाते ही नहीं। रात में कम से कम खाना चाहिए। अब श्रीभगवान् स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाते हैं।

चार प्रकार के अन्न श्रीभगवान् ने बताए - भक्ष्य, लेह्य, पेय और चोष्य को मैं पचाता हूँ।

भक्ष्य जो चबाकर खाया जाता है,
लेह्य जो चाटकर खाया जाता है,
पेय जो पीकर खाया जाता है और
चोष्य जो चूस कर खाया जाता है। इन चार ही प्रकार से भोजन किया जाता है, पाँचवा कोई तरीका नहीं है।

परमात्मा की धारणा से यह घटाकाश पुष्ट होता है। **प्राण**, **अपान**, **उदान**, **व्यान**, और **समान** ये पाँच प्राण हैं। नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनञ्जय ये पाँच उसके उप प्राण हैं।

15.15

सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं, मै सभी के हृदय में निवास करता हूँ, इसलिए हम कहते हैं, सबके अन्दर श्रीभगवान् हैं।

स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) - स्मृति, ज्ञान और अपोहन तीन बातें श्रीभगवान् कहते हैं। **स्मृति** अर्थात् पुरानी बातें जो हम पूर्व से जानते हैं उनका जागरण। **ज्ञान** अर्थात् जो हम नया सीखते हैं, आज हमने कुछ नया सीख लिया, विवेचन में नया सीख लिया जो नहीं जानते थे।

अपोहन, अर्थात नए और पुराने संशयों का निवारण। जिन साधकों की स्मृति और ज्ञान पुष्ट होता है, उनका अपोहन प्रबल होता

है, अर्थात उनके सोचने, समझने की शक्ति विकसित होती है। उनको किसी विषय में संशय नहीं होता, उनके पास हर प्रश्न का उत्तर रहता है और हर समस्या का समाधान भी। जिसके मन में जितनी अधिक स्पष्टता रहती है, श्रीभगवान् की अपोहन की शक्ति उन्हें प्राप्त है। जिसके अन्दर जितनी स्पष्टता है, समझ जाना उसके अन्दर परमात्मा का जाग्रत निवास है।

सब वेदों में जानने योग्य भी श्रीभगवान् हैं। वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाले भी श्रीभगवान् हैं।

15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

विवेचन - श्रीभगवान् ने श्लोक सोलह, सत्रह और अट्ठारह में अपने गोपनीय रूप का वर्णन किया है और एक नवीन दृष्टि से अपने स्वरुप का प्रतिपादन किया है। उन्होंने यहाँ नाशवान और अविनाशी में भेद को स्पष्ट किया है।

अभी तक हमने प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, देह-देहि, नाशी-अविनाशी इत्यादि शब्द सुने जो एक दूसरे के समानार्थक हैं।

बचपन से लेकर युवावस्था और फिर वृद्धावस्था तक हमारा शरीर परिवर्तित होता है जो हमें हमारी फ़ोटो से ज्ञात होता रहता है, परन्तु हमारे भीतर स्थित अविनाशी आत्मा का स्वरुप स्थायी है और अनन्त युगों से वही चला आ रहा है। साधारण रूप में यह देह मरने वाला, विनाशी है। इस देह के भीतर रहने वाला जीवात्मा जो कभी नहीं मारता, अविनाशी है।

हमने यह अनुभव किया होगा कि कई बार हम इतनी गहरी नींद सोते हैं कि इन्द्रियों में सजगता आने और चेतना जागृत होने में समय लग जाता है। इस अवस्था में हमारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों ही सुषुप्त थे तो फिर कौन जगा था और जानता था कि मुझे गहरी नींद आयी। उस पल की साक्षी हमारी जीवात्मा थी।

श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि जड़-चेतन की दो अवस्थायें तो सामान्यतः सभी को ज्ञात हैं अब इससे गूढ़ ज्ञान वे प्रदान करने वाले हैं।

15.17

उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

विवेचन - श्रीभगवान् ने यहाँ उत्तम पुरुष की व्याख्या की है। हम परमात्मा के अंश हैं यह बात तो सत्य है परन्तु परमात्मा हमारा निर्माण कर सकते हैं, हम उनका नहीं कर सकते अर्थात् एक जगह असीमित शक्ति है और एक जगह सीमित शक्ति।

श्रीभगवान् कहते हैं - **प्रकृतिम स्वम निष्ठाय संभवामि युगे युगे**

श्रीभगवान् ने जब-जब धरती पर अवतार लिया तो वे किस रूप में आयेंगे, किसके घर और किसकी गर्भ से पैदा होंगें इत्यादि निर्णय वे स्वयं लेते हैं। उन्हें यह अधिकार है जो हमारे पास नहीं। श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरे अंश होते हुए भी, तुम अंश मात्र

हो और मैं सम्पूर्ण हूँ, यह अन्तर है। तुम पुरुष हो, मैं उत्तम पुरुष हूँ।

15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं पुरुषोत्तम हूँ, वे स्वयं अपना नामकरण करते हैं। 'पुरुष' का तात्पर्य यहाँ आत्मा है, महिला-पुरुष का लिङ्ग भेद नहीं। शास्त्रों में पुरुष शब्द का अर्थ जीवात्मा है। पुरुष उस पुरुषोत्तम के अंश की संज्ञा है।

15.19

यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं, जड़ और चेतन दोनों महाकाश, मठाकाश और घटाकाश में विद्यमान हैं परन्तु इन्हें कौन सम्भालता है ? सूर्य को कौन तेज प्रदान करता है ? ब्रह्माजी सृष्टि का निर्माण करते हैं पर ब्रह्माजी का निर्माण किसने किया और जब ब्रह्माजी नहीं रहेंगें तो उस अन्तराल में कौन सृष्टि का लेखा-जोखा सुरक्षित रखेगा?

श्रीभगवान् ही सबका निर्माण करते हैं, सबका भरण-पोषण करते हैं और सबको समाप्त करने का कार्य भी वे ही करते हैं।

वे आगे कहते हैं कि पुरुष पुरुषोत्तम के निकट है, प्रकृति से दूर है। हम पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं यदि हम अपनी पाप कामनाओं और वासनाओं पर नियन्त्रण पा सकें। हम अपनी वृत्तियों के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं कर पाते परन्तु जो तत्त्व से ईश्वर को जान लेता है वह इस दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

अब श्रीभगवान् इस अध्याय का समापन करते हैं और इस अध्याय को शास्त्र की उपमा देते हैं।

15.20

इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

विवेचन - श्रीभगवान् को अर्जुन के दो गुण सबसे प्रिय हैं, अनघ और अनुसूय। अनघ, जिसने कभी पाप नहीं किया, अनुसूय अर्थात् जो कभी किसी की निन्दा नहीं करता।
श्रीभगवान् अर्जुन को इस प्रकार इस अत्यन्त गोपनीय शास्त्र को समझाते हैं। इस अध्याय की अत्यधिक महिमा है अतः श्रीभगवान् ने इसे शास्त्र की उपमा दी। इस तत्त्व को श्रीभगवान् के मुखारविन्द से प्राप्त कर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है। फिर उस ज्ञानी भक्त के अन्तः करण में ईश्वर की ही चाह शेष रह जाती है।

इस अध्याय को शास्त्र की उपमा देकर और अपने पुरुषोतम स्वरूप का वर्णन कर श्रीभगवान् अर्जुन को कृतार्थ करते हैं, हम सभी को कृतार्थ करते हैं। भगवान वेदव्यास रचित पुष्पिका के पाठ व हरिनाम सङ्कीर्तन के साथ विवेचन सत्र पूर्ण हुआ और

प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता - दसा चावड़ा दीदी
प्रश्न - भगवद्गीता और गीता में क्या अन्तर है?
उत्तर - दोनों में कोई अन्तर नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता पूरा नाम है, भगवद्गीता और आगे-आगे गीता उसके संक्षिप्त नाम होते गए। श्रीमद्भागवत महापुराण और भगवद्गीता में अधिक संशय होता है। श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन है जो राजा परीक्षित ने सुखदेव मुनि से सुनी। श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है। यह पर्व महाभारत के 18 पर्वों में से एक है, और श्रीमद्भगवद्गीता इसी पर्व के पच्चीसवें अध्याय से बयालीसवें अध्याय तक विस्तृत है।

प्रश्नकर्ता - जयराजू भैया
प्रश्न - प्रतिदिन के सञ्चित कर्मों से कैसे मुक्ति मिल सकती है ?
उत्तर - श्रीभगवान् ने इसके लिए चार मार्ग बतलाये हैं। ज्ञान, भक्ति, कर्म और ध्यानयोग और इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों मार्ग हैं। हमें केवल उनके शरणागत होना है। कर्मयोग अर्थात कर्ता भाव और कर्मफल का त्याग। मैं कर्ता नहीं, मुझसे करवाया गया और मैं अपने कर्त्तव्य के निहित करता हूँ, इस भाव का विद्यमान होना। ज्ञानयोग, 'वासुदेव सर्वमिति', वासुदेव ही सर्वव्याप्त हैं। भक्तियोग में, 'मैं भगवान का हूँ' के भाव से युक्त हो सभी कार्य करना।

श्रीभगवान् ने कहा - **अहं त्वं सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**।

तुम अपना कर्म करो, मैं तुम्हारा संरक्षण करूँगा। सब कर्मों को भगवान को अर्पण कर दो।

प्रश्नकर्ता - साहु भैया
प्रश्न - अङ्ग दान करना उचित है?
उत्तर - शास्त्रों में अङ्ग दान वर्जित है क्योंकि उस समय ऐसी व्यवस्था नहीं थी कि उस अङ्ग का उपयोग अन्य मनुष्य कर लें । परन्तु वर्तमान में यदि किसी की रूचि है नेत्र दान करने में तो वे कर सकते हैं। यदि उसका दोष भी लगेगा तो किसी की भलाई के लिए किये गए कार्य के फल से वह दोष कट जायेगा। सम्पूर्ण देह का दान करने से दुर्गति होती है और वह निषेध है।

प्रश्नकर्ता - रानी दीदी
प्रश्न - पूजा में ध्यान क्यों नहीं लगता?
उत्तर - यह समस्या अनेक साधकों के सामने आती है। दिन के आठ घण्टे सोने और खाने के निकालने पर बचे सोलह घण्टों में जो मेरी वृत्ति रहती है वह ही पूजा के समय भी प्रधान होती है। दिन के सोलह घण्टों में सत्त्व, राजस या तामस गुण में से क्या प्रधान रहता है यह ध्यान देने योग्य विषय है। पूजा के लिए सात्त्विक वृत्ति की आवश्यकता है।

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये, राधे राम राधे राम कहिये।

सब कुछ हमारी इच्छानुसार नहीं होता। इसमें भी प्रभु इच्छा मान मन को व्यथित न करें।

प्रश्नकर्ता - प्रदन्या दीदी
प्रश्न - पन्द्रहवें अध्याय का पाठन भोजन से पूर्व करना चाहिये ?
उत्तर - यदि एक ही अध्याय का पाठ करने का समय है तो परम्परानुसार पन्द्रहवें अध्याय का किया जाता है, अवसर चाहे कोई भी हो।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||